जैन दर्शन

सामान्य परिचय - जैन शब्द 'जिन' से बना है जिसका अर्थ है- 'जीतने वाला'। अर्थात वे लोग जिन कहलाये जिन्होंने अपने इन्द्रियों को जीत लिया या उन पर विजय पा लिया। ये जिन (आध्यात्मिक-विजेता) ही केवली कहलाये। साथ ही इन्हें तीर्थंकर भी कहा जाता है।

→ **तीर्थंकर** → भवसागर या संसार सागर को पार कर जाने वाला।

→ **अर्हत** → अरि + हन्त (शत्रुनहन्ता) - अर्थात जिसने अपने राग, द्वेष मोह, माया, क्लेश रूपी शत्रुओं को मार दिया हो।

→ जैन धर्म के संस्थापक एवं प्रथम तीर्थंकर थे - **ऋषभदेव**। जैन धर्म में कुल २४ तीर्थंकर हुए जिनमें **२३वें पार्श्वनाथ** एवं **२४वें** एवं अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी थे।

→ महावीर स्वामी का जन्म 540 ई० पू० वैशाली (बिहार) के कुण्डलग्राम में हुआ था।

→ **पिता** → सिद्धार्थ (ज्ञातृककुल के सरदार), **माता** - त्रिशला देवी।

→ बचपन का नाम → वर्द्धमान।

→ इनके अन्य नाम हैं → वर्धमान, वीर, अतिवीर, महावीर और सन्मति। (जैन ग्रंथ उत्तरपुराण के अनुसार)

→ **पत्नी** → यशोदा, **पुत्री** → अनोज्जा प्रियदर्शनी, **दामाद** → जमाली।

→ **ज्ञान प्राप्ति** → 42 वर्ष की उम्र में (12 साल की कठिन तपस्या के बाद)

→ **गृह त्याग** → 30 साल की उम्र में माता-पिता की मृत्यु के बाद।

→ **ज्ञान प्राप्ति स्थान** → जाम्भिक के समीप, ऋजुपालिका नदी के तट पर साल वृक्ष के नीचे।

→ ज्ञान प्राप्ति के बाद ये 'जिन' (विजेता), 'अर्हत' (पूज्य) और 'निर्ग्रन्थ' (बंधनहीन) कहलाये।

→ मृत्यु → 72 वर्ष की आयु में 468 ई० पू बिहार राज्य के पावापुरी (राजगीर) में हो गई।

→ जैन आगम भाषा - प्राकृत

→ इनके ग्रंथों को आगम कहा जाता है।

→ विश्वास करते हैं → आत्मा (जीव), पुनर्जन्म, कर्मवाद, आध्यात्मिक विचार, आचार, पंचव्रत, त्रिरत्न, मोक्ष।

→ त्रिरत्न है - सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् आचरण।

→ पंचमहाव्रत है - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य।

→ जैन दर्शन है → अनीश्वरवादी दर्शन - (ईश्वर को नहीं मानता)
नास्तिक दर्शन - (वेदों की प्रमाणिकता में अविश्वास)
सापेक्षतावादी दर्शन - (ज्ञान वस्तुओं के गुणों एवं धर्मों के सापेक्ष)
बहुतत्ववादी - (मूल तत्वों को अनेक मानने वाला)
वस्तुवादी - वस्तु की सत्ता को ज्ञाता से पृथक और स्वतंत्र मानने के कारण)

→ सम्प्रदाय → दो है - श्वेताम्बर और दिगम्बर

→ श्वेताम्बर - श्वेत वस्त्र धारण करने के कारण।

→ दिगम्बर - नग्न होने के कारण

(इन दोनों सम्प्रदायों में सैद्धांतिक मतभेद कम एवं व्यावहारिक मतभेद अधिक है)

द्रव्य (Substance)

जैन दर्शन में द्रव्य तत्व का विशेष स्थान है। जैन ग्रंथ तत्वार्थाधिगम सूत्र में द्रव्य की परिभाषा देते हुए कहा गया है - 'गुणपर्यायवद् द्रव्यम्'। इसमें उमास्वाति जी ने कहा है कि द्रव्य वह है जिसमें गुण तथा पर्याय हों। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि, जो गुण और पर्याय का आश्रय है वह द्रव्य है। द्रव्य कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि जो नित्य रूप से द्रव्य में पाया जाता है वह 'गुण' है और जो परिवर्तनशील है, वह 'पर्याय' है।

द्रव्य का एक दूसरा लक्षण बताते हुए कहा गया है कि, द्रव्य वह है जो सत् है और सत् उसे कहते हैं जो उत्पाद (उत्पत्ति), व्यय (विनाश) और ध्रौव्य (स्थिति) युक्त हो। यथा- "उत्पत्ति-व्यय-ध्रौव्यलक्षणं सत्"। अर्थात् जिसमें उत्पत्ति, विनाश, और स्थिरता एक समय में पाई जाये वह सत् है।

उदाहरणार्थ - स्वर्ण (सोने) के कुछ टुकड़ों से जब कुण्डल बनाये जाते हैं तो कुण्डल पर्याय की उत्पत्ति, टुकड़ा पर्याय का विनाश और पीले रंग के गुण वाले सोने की स्थिरता एक समय में दृष्टिगोचर होती है। उसी प्रकार द्रव्य का उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक लक्षण अर्थ पर्याय वाले उदाहरण में भी घटित होता है। जैसे- दही मीठे से खट्टा हुआ तो रस गुण की मीठी पर्याय का व्यय (विनाश) हुआ, खट्टी पर्याय का उत्पाद (उत्पत्ति) हुआ और दही की ध्रौव्यता (स्थिरता) ज्यों की त्यों रही। इस प्रकार से उत्पत्ति और विनाश पर्यायाश्रित हैं और स्थिरता गुणाश्रित। अतः हम कह सकते हैं कि द्रव्य नित्यानित्यात्मक या परिणामी-नित्य है।

जैन दर्शन में द्रव्य को धर्मी के नाम से भी जाना जाता है। चूंकि वस्तुओं के अनन्त धर्म होते हैं और धर्म किसी धर्मी का ही होता है। इसलिए जिसका धर्म होता है उसे धर्मी कहते हैं और धर्मी में जो लक्षण पाया जाता है उसे धर्म कहते हैं। इस तरह से प्रत्येक द्रव्य के दो प्रकार के धर्म होते हैं —

① - स्वरूप धर्म या नित्य धर्म — इसे गुण कहते हैं।

② - आगन्तुक धर्म या परिवर्तनशील धर्म — ये पर्याय कहलाते हैं।

(1) स्वरूप धर्म → वे धर्म जो सदा द्रव्य में विद्यमान रहते हैं।
जैसे - चैतन्य आत्मा का स्वरूप है।

(2) - आगन्तुक धर्म → ये धर्म द्रव्य में सदा विद्यमान नहीं रहते हैं बल्कि आते-जाते रहते हैं। जैसे - इच्छा-संकल्प, सुख-दुःख आदि आत्मा के परिवर्तनशील धर्म हैं।

इस प्रकार से यह संसार भिन्न-भिन्न प्रकार के द्रव्यों के संयोग से बना है। जैन दर्शन के अनुसार तीनों लोकों में कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो इन द्रव्यों के बिना हो सके। अर्थात् विश्व की समस्त वस्तुएँ इन तीन रूपों (उत्पत्ति, विनाश, स्थिति) में विद्यमान हैं। चूंकि यहाँ पर द्रव्य के गुण परिवर्तनशील नहीं होते हैं। अतः इस दृष्टि से संसार नित्य है किंतु उनके पर्याय बदलते रहते हैं। इस प्रकार से संसार अनित्य तथा परिवर्तनशील है। जैन दार्शनिक विश्व को एक दृष्टि से नित्य तथा दूसरी दृष्टि से अनित्य स्वीकार करते हैं या मानते हैं।

द्रव्य के प्रकार (भेद)

जैन दार्शनिक समस्त द्रव्यों को दो भागों में विभक्त करते हैं - अस्तिकाय और अनास्तिकाय द्रव्य।

(1) अस्तिकाय → ये अस्तिकाय इसलिए कहे जाते हैं क्योंकि ये अस्ति (है) और काय (शरीर) की भाँति स्थान या आकाश में रहते हैं। 'द्रव्यसंग्रह' में कहा गया है कि, गुणत्व के अनुसार आकाश के निरवयव भागों के समूह को अस्तिकाय कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं - जीव, अजीव।

जीव - जीव आत्मा का ही दूसरा नाम है। यह चेतन होता है। जीवों में चैतन्यता सदा विद्यमान रहता है। यह दो प्रकार का होता है - मुक्त जीव और बद्ध जीव।

मुक्त वे जीव हैं जिन्होंने मोक्ष पा लिया है अर्थात् बंधन से मुक्त हो चुके हैं तथा बद्ध वे जीव होते हैं जो अभी तक बंधन में ही बंधे हैं। बद्ध जीव पुनः दो प्रकार के होते हैं - त्रस (जंगम) गतिमान होते हैं और स्थावर (एकेंद्रिय जीव)

अजीव - वे अस्तिकाय जीव जिसमें चैतन्यता नहीं होती है। ये चार प्रकार के होते हैं - धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल।

(2) अनास्तिकाय द्रव्य → काल एक मात्र अनास्तिकाय द्रव्य है, क्योंकि ये एक अखंड द्रव्य है। समस्त विश्व में एक ही काल युगपत् है। हम देखते हैं कि जिस द्रव्य को काय (शरीर) है वह अपने काय के विभिन्न अंशों से आकाश के विभिन्न अंशों में वर्तमान रहता है। किंतु वर्तमान काल बिना अवयवों के ही समस्त विश्व में व्याप्त है। काल के दो भेद हैं -

(1) पारमार्थिक काल - नित्य और निराकार होता है। (पंड, दिन, मास)

(2) व्यावहारिक काल - जिसका प्रारम्भ और अन्त होता है। इसे 'समय' भी कहते हैं। (क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदि)

गुणरत्न कहते हैं कि, कुछ जैन दार्शनिक काल को भिन्न या स्वतंत्र द्रव्य नहीं मानकर अन्य द्रव्यों का ही पर्याय (mode) मानते हैं। आस्वाती के अनुसार द्रव्यों की वर्तना, परिणाम, क्रिया, नवीनता या प्राचीनत्व काल के कारण ही संभव होता है। काल भी गोचर नहीं होता इसलिए आकाश की भाँति इसका भी अस्तित्व अनुमान से ही सिद्ध होता है।

द्रव्य के प्रकारों को हम चार्ट के द्वारा संक्षेप में निम्न प्रकार से समझ सकते हैं —

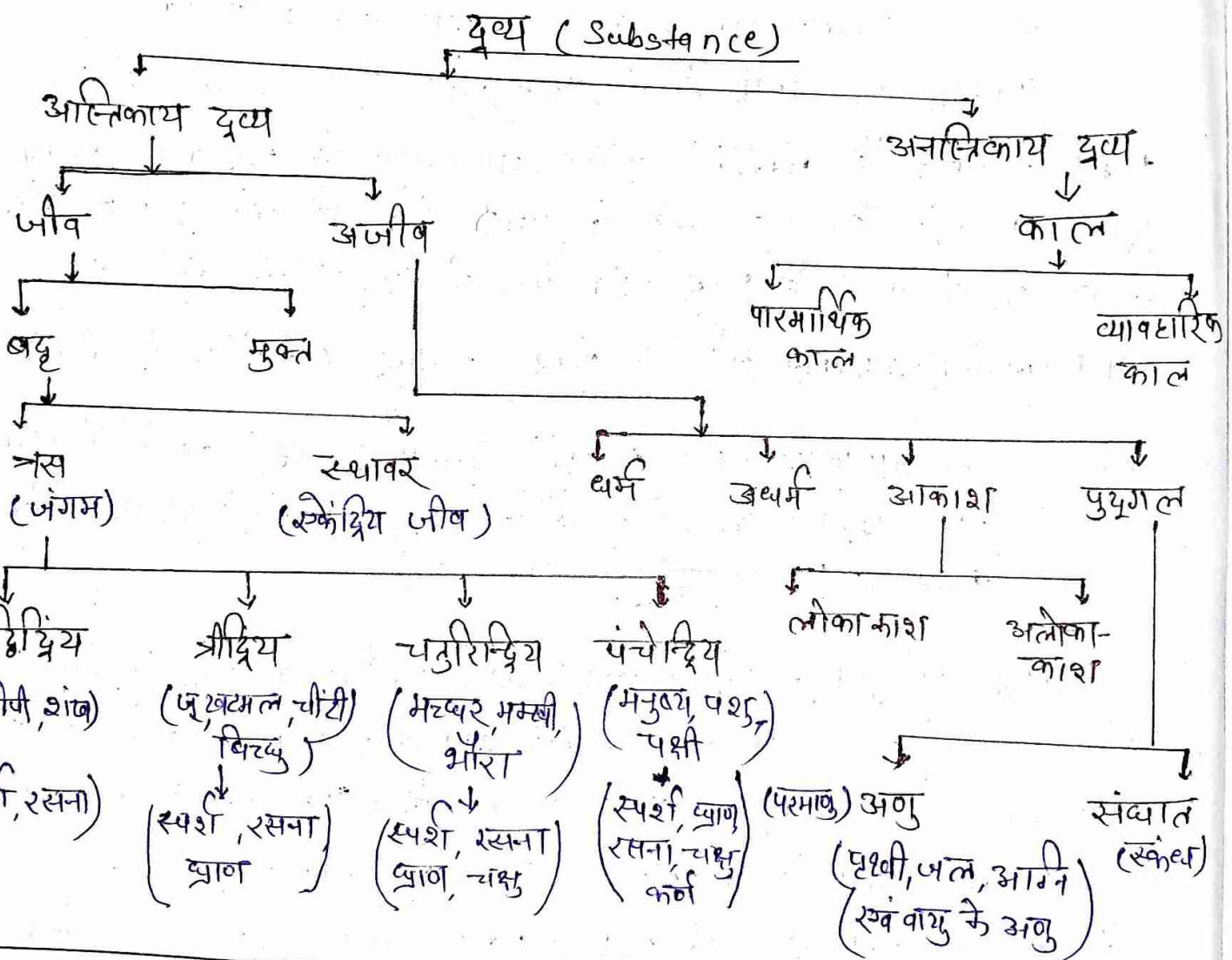

नोट → इन्द्रियाँ पाँच (5) प्रकार की होती हैं — स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण (कान)।
(त्वचा) (जीभ) (नाक) (आँख)

इनका इन पाँच कर्मेन्द्रियों के द्वारा ज्ञान होता है।—
त्वचा, जीभ, नाक, आँख, कान।